जैनों का सामाजिक इतिहास

डा० विलास ए० संगवे

मानद निदेशक, साहू शोध संस्थान, कोल्हापुर, (महाराष्ट्र)

अध्ययन का एक उपेक्षित क्षेत्र

जैनों का सामाजिक इतिहास महत्वपूर्ण होते हुए भी अब तक अध्ययन की दृष्टि से लगभग पूर्णतः उपेक्षित रहा है। अभी तक जैनों का इतिहास राजनीतिक या सांस्कृतिक दृष्टि से ही लिखा गया है। जैनों के राजनीतिक इतिहास के अन्तर्गत (i) राजाओं, मन्त्रियों एवं सैन्याधिकारियों की प्रशासकीय एवं युद्धगत निपुणतायें (ii) जैनों द्वारा देश के भिन्न-भिन्न भागों में राज्याश्रय के विवरण तथा (iii) राष्ट्र एवं राज्यों के राजनीतिक स्थायित्व या स्वाधीनता संग्राम में जैन व्यापारियों या सामान्य जैन समाज द्वारा किये गये विशिष्ट योगदान का विवरण दिया जाता है। जैनों का सांस्कृतिक इतिहास अध्ययन की दृष्टि से पर्याप्त विकसित है। इसके अन्तर्गत भाषा, साहित्य, स्थापत्य, पुरातत्व, संगीत एवं चित्रकला के क्षेत्रों में जैनों द्वारा किये गये महत्वपूर्ण योगदान का विवरण और मूल्यांकन किया जाता है। दुर्भाग्य से, जैन विद्या-विशारदों ने जैनों के सामाजिक इतिहास पर समुचित ध्यान नहीं दिया है। जैनों ने प्राचीन काल से लेकर आज तक जैनधर्म की प्रतिष्ठा को न केवल सुरक्षित ही रखा है, अपितु उसे एक जीवन्त धर्म भी बनाये रखा है। इसका कारण यह रहा है कि उन्होंने जैनधर्म द्वारा प्रतिष्ठित चारित्र एवं व्यवहार के नियमों का श्रद्धापूर्वक अविरत रूप से पालन एवं प्रदर्शन किया है. इस दृष्टि से उनके सामाजिक जीवन के विविध पक्षों का अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वस्तुतः जैनों का इतिहास तबतक पूर्ण नहीं माना जा सकता जबतक उनकी राजनीतिक एवं सांस्कृतिक क्रियाशीलता एवं सफलताओं के साथ उस समाज के सामाजिक पक्ष का विवरण भी उसमें समाहित न किया जावे।

जैन : एक महत्वपूर्ण अल्पसंख्यक समाज

भारत के ईसाई, बुद्ध, सिख, मुस्लिम तथा अन्य अल्पसंख्यक समुदायों की तुलना में जैन समाज अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण स्थान पर आती है। १९८१ में प्रकाशित भारतीय जनगणना के अनुसार, भारत में विद्यमान छह प्रमुख धर्मावलंबियों में इसके अनुयायियों की संख्या सबसे कम है। भारत की समग्र जनसंख्या में इसकी आबादी का प्रतिशत लगभग ०·६ है अर्थात् प्रत्येक दस हजार भारतीयों में ८२०० हिन्दू, ११०० मुस्लिम, २५० ईसाई, १९० सिख, ७० बुद्ध हैं जब कि जैन केवल ६० ही हैं।

इनकी जनसंख्या अल्प अवश्य है, पर ये भारत के सभी प्रान्तों में फैले हुए हैं। सिखों के समान ये किसी एक क्षेत्र में सघनता से नहीं पाये जाते। सिखों के समान न तो उनकी कोई विशेष वेशभूषा है और न ही उनकी अपनी कोई विशेष भाषा ही है। इस तरह जैन, वास्तव में, भारतीय हैं और इसीलिये, अल्पसंख्यक होते हुए भी, उन्हें सर्वत्र आदर एवं प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखा जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि जैन समाज गांवों की तुलना में शहरों में ही अधिक बसती है। जनगणना के आँकड़ों से पता चलता है कि नगरी व ग्रामीण जैनों की जनसंख्या का अनुपात लगभग ६० : ४० है। इसलिये अधिकांश जैन नगरीकृत हैं। लेकिन वे फारसी या यहूँदियों के समान उच्चतः नगरीकृत नहीं हैं।

यह भी स्मरणीय है कि जैन समुदाय भारत का एक प्राचीनतम समुदाय है। जैन धर्म का अस्तित्व भारतीय इतिहास के प्रारम्भ से ही माना जा सकता है। उनकी यह प्राचीनता भी उनकी विशेषता है। यह तथ्य भारत के अन्य धार्मिक अल्पसंख्यकों पर लागू नहीं होता। यही नहीं, वे शत प्रतिशत भारतीय चरित्र के हैं। ये इस देश के सहज निवासी हैं और उनकी भाषा, धर्मस्थल, मिथक एवं महापुरुष--सब इसी देश के हैं। जैनों की, भारत से बाहर, किसी अन्यधर्म या संस्था से संबंद्धता नहीं है।

संख्या में अल्प होते हुए भी जैनों का सदैव पृथक् अस्तित्व रहा है और अपनी विशेषताओं के कारण उन्होंने इसे बनाये भी रखा है। एक स्वतन्त्र धर्म होने के नाते, इसके अनुयायियों का पवित्र विशाल साहित्य है, दर्शन है, और अहिंसा के मूलभूत सिद्धान्त पर आधारित आचरण संहिता है। वस्तुतः जैनों की आचार-विचार सरणी अहिंसा की धारणा पर ही आधारित है। भारत के अनेक धर्म अहिंसा के सिद्धान्त को महत्व देते हैं, पर जैन उसके आधार पर निर्मित नियमों के परिपालन को सर्वाधिक महत्व देते हैं।

प्राचीनता के अतिरिक्त जैनों की एक विशेषता और है—यह सदा से अविच्छिन्न रही है। विश्व में बहुत कम समुदाय ऐसे होंगे जो इतने दीर्घकाल तक अविच्छिन्न बने रहें हों। सचमुच ही, यह आश्चर्य की बात है कि भूतकाल के अनेक धर्मों और पन्थों का नामोनिशां नहीं बचा, जैन कैसे अपनी अविच्छिन्नता बनाये हुए हैं। उनका यह सुदीर्घ अस्तित्व उनकी विशेषता ही मानी जानी चाहिये।

जैनों की अतिजीविता

जैनों की सुदीर्घकालीन अविच्छिन्नता उनकी एक प्रशंसनीय सफलता है। जैन और बौद्ध भारत में श्रमण संस्कृति के प्रमुख स्तम्भ रहे हैं! फिर भी, इस प्रसंग में यह विचारणीय है कि बौद्ध धर्म भारत में लुप्त हो गया और अन्य देशों में फैला, पर जैन धर्म अभी भी भारत का एक जीवन्त धर्म है और संभवतः श्रीलंका का छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं फैल पाया। जैनों की इस अविच्छिन्न अतिजीविता के अनेक कारण हैं।

(अ) सामाजिक संगठन

जैनों की अतिजीविता का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण उनकी उत्तम सामाजिक व्यवस्था रही है। इस संगठन का केन्द्रबिन्दु जनसाधारण रहा है। जैन समुदाय परम्परागत रूप से चार अंगों में विभाजित हैं—**साधु** या पुरुष तपस्वी, **साध्वी** या स्त्री-तपस्वी, **श्रावक** या पुरुषजन एवं **श्राविका** या स्त्री जन। इन सभी अंगों में परस्पर में प्रगाढ़ सम्बन्ध है। जैनों में साधु और सामान्य जन के लिये एक ही प्रकार के व्रत या धर्म-नियम माने गये हैं। यह अवश्य है कि साधु को गृहस्थ की तुलना उनका पालन अधिक कठोरता एवं ईमानदारी से करना पड़ता है। गृहस्थ का यह कर्त्तव्य है कि वह साधुओं के आहार-विहार की पूरी तरह व्यवस्था करे। इस दृष्टि से साधु-संघ पूर्णतः गृहस्थ समाज पर आश्रित है। इन साधुओं ने प्रारम्भ से ही जैनों के धार्मिक जीवन को नियन्त्रित किया है और इसी प्रकार गृहस्थों ने भी साधु के चरित्र को उत्तम बनाये रखने में अपना योगदान किया है। इसीलिये यह आवश्यक है कि साधु भौतिक समस्याओं से पूर्णतः विलगित रहे और वह अपने तपस्वी जीवन के अन्य स्तर को कठोरता पूर्वक बनाये रखे। यदि साधु इस स्तर के लिये कमजोर प्रमाणित होता है, तो उसे इस पद से विमुक्त किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में जर्मन विद्वान्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एच. जेकोबी ने सही कहा है, "यह स्पष्ट है कि समुदाय का सामान्य जन जैन संगठन में बौद्ध संगठन के समान बाहरी, हितैषी या संरक्षक के रूप में नहीं माना जाता था। उसकी स्थिति धार्मिक कर्त्तव्य और अधिकारों से पूर्णतः परिभाषित रही है। सामान्य जन एवं साधुओं के बीच का सम्बन्ध अत्यन्त प्रभावी था। यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि इस सुदृढ़ सम्पर्क के कारण ही जैन साधुओं एवं गृहस्थों के आचार में समानता आई जिसमें केवल गुणात्मकता का ही अंतर रहा। इसीसे जैन संघ के भीतर कोई मूलभूत परिवर्तन नहीं हो पाये और यह बाहरी प्रभावों से दो हजार साल तक बचा रह सका। इसके विपर्यास में, बौद्धों में गृहस्थों के प्रति इतनी कठोरता नहीं थी और उन्होंने असाधारण विकास पथ का अनुसरण किया। इससे वह अपनी जन्मभूमि से ही लुप्त हो गया।"

(ब) अपरिवर्तनीयता का संरक्षण

जैनों की अतिजीविता का एक अन्य महत्वपूर्ण कारण उनकी अपरिवर्तनीयता के संरक्षण की वृत्ति भी रही है। इस कारण ही वे अनेक सदियों से अपनी मूलभूत संस्थाओं और सिद्धान्तों को दृढ़ता से पकड़े हुए हैं। जैनों के आधारभूत महत्वपूर्ण सिद्धान्त आज भी लगभग ज्यों के त्यों बने हुए हैं। यह संभव है कि गृहस्थ और साधुओं की जीवन पद्धति एवं व्यवहार से सम्बन्धित कुछ कम महत्वपूर्ण नियम आज उपेक्षणीय या अनुपयोगी हो गये हों, फिर भी इस बात में शंका नहीं है कि आज के जैन समुदाय का धार्मिक जीवन तत्वतः वैसा ही है जैसा आज से दो हजार वर्ष पूर्व था। अपने सिद्धान्तों के प्रति कठोर लगाव की यह प्रवृत्ति जैन स्थापत्यकला और मूर्तिकला में भी प्रतिबिम्बित होती है। जैन मूर्तियों के निर्माण की शैली वस्तुतः आज भी पूर्ववत् बनी हुई है। इसलिये परिवर्तन के प्रति निश्छल अस्वीकृति की वृत्ति जैनों के लिये सुदृढ़ सुरक्षा कवच रही है।

(स) राज्याश्रय

भारत के विभिन्न भागों में प्राचीन और मध्यकाल में अनेक राजाओं ने जैनधर्म को संरक्षण प्रदान किया। इस संरक्षण ने निश्चितरूप से जैनों की अतिजीविता में सहायता की है। गुजरात और कर्नाटक तो प्राचीन काल से जैनों के प्रभावशील क्षेत्र रहे हैं क्योंकि इन दोनों क्षेत्रों में अनेक शासक, मंत्री एवं सेनाध्यक्ष स्वयं जैन रहे हैं। जैन शासकों के अतिरिक्त, अनेक जैनेतर शासकों ने भी जैन धर्म के प्रति उदार दृष्टिकोण रखा। राजपूताना के इतिहास से पता चलता है कि अनेक राजाओं ने जैन सिद्धान्तों से प्रभावित होकर प्राणि-बध पर प्रतिबंध लगा दिया। अनेक राजाओं ने बरसात के चार महिनों के लिये तेलघानी और कुम्हार के चके चलाने पर प्रतिबंध लगा दिया। दक्षिण में प्राप्त अनेक शिलालेखों से पता चलता है कि अनेक जैनेतर राजाओं ने जैनों के प्रति धार्मिक उदारता दिखाई और धर्म-पालन के लिये सुविधायें दी। इन शिलालेखों में विजयनगर के राजा बुक्क राय-प्रथम का १३६८ ई० का शिलालेख अत्यंत महत्वपूर्ण है। जब विविध क्षेत्रों के जैनों ने राजा से यह शिकायत की कि उन्हे वैष्णवों के अत्याचारों से सुरक्षा प्रदान की जावे, तब राजा ने सभी सम्प्रदायों के नेताओं को बुलाकर कहा कि मेरे लिये सभी संप्रदाय समान हैं। सभी को अपने धार्मिक आचार पालन की स्वतन्त्रता है।

(द) साधु-संस्था की प्रवृतियां

अनेक प्रसिद्ध जैन सन्तों के विविध प्रकार के क्रियाकलापों ने भी जैनों की अतिजीविता में योगदान किया है; इन क्रियाकलापों ने सामान्य जन पर जैन संतों की विशेषताओं की छाप डाली। ये सन्त ही जैन धर्म के समग्र भारत में फैलने के लिये उत्तरदायी हैं। श्रीलंका के इतिहास से पता चलता है कि जैन धर्म वहाँ भी फैला। जहाँ तक दक्षिण भारत का प्रश्न है, यह कहा जा सकता है कि प्राचीन काल में पूरे दक्षिण भारत में जैन साधु-संघ फैले हुए थे। वे अपने देशभाषा में निर्मित साहित्य के माध्यम से धीरे-धीरे जैन धर्म के नैतिक सिद्धान्तों का दृढ़तापूर्वक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रचार करते रहे। जैन सन्तों की साहित्यक एवं धर्मोपदेशक प्रवृत्तियों ने हिन्दू पुनरुत्थान के समय में भी दक्षिण में जैनों की स्थिति को सुदृढ़ बनाये रखा। कभी-कभी तो ये सन्त राजनीतिक घटनाओं में भी रुचि लेते थे और आवश्यकता के अनुसार जनता को मार्गनिर्देश करते थे। यह सुज्ञात है कि गंग और होयसल राजाओं को नये राज्य की स्थापना की प्रेरणा जैनाचार्यों ने ही दी थी। इन क्रियाकलापों के बावजूद भी जैनाचार्य अपने तपस्वी जीवन को भी उन्नत बनाये रखते थे। सामान्यतः जनता एवं शासक जैन साधुओं के प्रति आस्था एवं आदर भाव रखते थे। दिल्ली के मुसलिम शासक भी उत्तर और दक्षिण के विद्वान् जैन साधुओं का आदर और सम्मान करते थे। इसमें कोई अचरज की बात नहीं है कि ऐसे अनेक प्रभावकारी संतों की विशेषताओं एवं क्रियाकलापों ने जैन समुदाय की अतिजीविता में सहायता की हो।

(य) चार दानों की प्रवृत्ति

अल्प संख्यक समुदाय को अपने अस्तित्व की रक्षा के लिये अन्य लोगों की सदिच्छा पर निर्भर करना पड़ता है। यह शुभेच्छा तभी प्राप्त हो सकती है जब हम कुछ सर्वजनोपयोगी क्रियाकलाप करें। जैनों ने इस दिशा में काम किया और आज भी कर रहे हैं। उन्होंने शिक्षण संस्थायें खोलकर जनसाधारण को शिक्षित बनाने में योग दिया। सार्वजनिक औषधालय या चिकित्सालय खोलकर लोगों का दुख-दर्द दूर किया। प्रारम्भ से ही जैनों ने आहार, निवास, औषध और विद्या के रूप में चार दानों का सिद्धान्त बनाया और उसका पालन किया। कुछ लोगों का कथन है कि जैन धर्म के प्रचार और प्रभाव में इस प्रवृत्ति का बड़ा हाथ है। इस हेतु जहाँ जैनों की पर्याप्त संख्या रही, वहाँ उन्होंने बाल आश्रम, धर्मशाला, औषधालय और स्कूल खोले। जैनों के लिये यह प्रशंसा की बात है कि उन्होंने शिक्षा-प्रसार के क्षेत्र में बहुत काम किया है। दक्षिण देश में जैन साधु बच्चों को पढ़ाया करते थे। इस सन्दर्भ में डा० अल्तेकर ने सही लिखा है कि वर्णमाला के ज्ञान के पहले बच्चों को श्री गणेशाय नमः के माध्यम से गणेश को नमस्कार करना चाहिये। हिन्दुओं के लिये यह उचित ही है, लेकिन दक्षिण में आज यह परम्परा है कि श्री गणेशाय नमः के पहले "ॐ नमः सिद्धं" का जैन वाक्य कहा जाता है। इससे यह पता चलता है कि जैन साधुओं ने सामान्य शिक्षा पर अपना इतना प्रभाव डाला कि हिन्दुओं ने इसे, जैनधर्म के अवनमन काल के बाद भी, चालू रखा। आज भी जैनों में चार दान की प्रवृत्ति सारे भारतवर्ष में देखी जा सकती है। वस्तुतः किसी राष्ट्रीय एवं परोपकारी कार्य में सहायता के मामले जैन कभी किसी से पीछे नहीं रहते।

(र) अन्य धर्मावलंबियों से मधुर संबंध

जैनों की अतिजीविता का एक अन्य महत्वपूर्ण कारण यह भी है कि उन्होंने हिन्दुओं एवं अन्य जैनेतरों के साथ मधुर और घनिष्ठ सम्पर्क बनाये रखा। पहले यह सोचा जाता था कि जैन धर्म बुद्ध या हिन्दू धर्म की एक शाखा है। लेकिन अब यह सामान्यतः मान लिया गया है कि जैनधर्म एक स्वतन्त्र और विशिष्ट धर्म है और यह हिन्दुओं के वैदिक धर्म जितना ही पुराना है। जैन, बौद्ध एवं हिन्दू धर्म भारत के तीन प्रमुख धर्म हैं। इनके अनुयायी सदैव एक-दूसरे के साथ रहे हैं। इसलिये यह स्वाभाविक है कि उनका एक-दूसरे पर प्रभाव पड़े। इन तीनों ही धर्मों में इसीलिये निम्न बातों के संबंध में लगभग समान विचार पाये जाते हैं :

(i) मुक्ति और पुनर्जन्म
(ii) पृथ्वी, स्वर्ग और नरक का वर्णन
(iii) धर्म गुरुओं या तीर्थंकरों का अवतार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भारत से बौद्धधर्म के विलोपन के पश्चात् जैन और हिन्दू परस्पर में और निकट आये। यही कारण है कि सामान्य सामाजिक जीवन में जैन और हिन्दूओं में कोई अन्तर ही नहीं मालूम होता। इस तथ्य से यह नहीं समझना चाहिए कि जैन हिन्दुओं के अंग हैं या जैन धर्म हिन्दू धर्म की शाखा है। वास्तव में, यदि हम जैन धर्म-हिन्दू धर्म की तुलना करें तो पता चला है कि इनमें अन्तर बहुत है। इनमें जो एक रूपता है, वह सामान्य जीवन-पद्धति की विशेष बातों के सम्बन्ध में ही है। यदि अच्छी तरह देखा जावे, तो दोनों के विभिन्न उत्सवों के उद्देश्य भी भिन्न ही होते हैं।

यह स्पष्ट है कि जैन और हिन्दुओं के अनेक सामाजिक और धार्मिक व्यवहारों में मौलिक अन्तर है। ये अन्तर आज तक बने हुए हैं। इसके साथ ही, हमें यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि जैनों के अनेक सामाजिक और धार्मिक व्यवहारों में जैनेतर तत्वों का भी समाहरण भी होता रहा है। ऐसी बात नहीं है कि यह प्रक्रिया अन्धरूप में अपनाई गई हो। ऐसा प्रतीत होता है कि जैनों को जैनेतर तत्वों का समाहरण जटिल परिस्थितियों के साथ समायोजन के लिये करना पड़ा था। यह उनके सुरक्षा या अतिजीवन के लिये स्वेच्छया स्वीकृति के रूप में माना गया। लेकिन ऐसा करते समय यह ध्यान रखा गया कि इस प्रक्रिया से धार्मिक व्यवहारों की शुद्धता पर विशेष प्रभाव न पड़े। सोमदेव के समान मध्य युग के दक्षिण देशीय जैनाचार्यों ने लौकिक परम्पराओं और व्यवहारों को अपनाने की तब तक स्वीकृति दी जब तक उनसे सम्यक्त्व की हानि और व्रतों में दूषण न हो पावे। लौकिक परंपराओं के पालन की स्वीकृति से जैनों के दो लाभ हुए। जैन और हिन्दुओं के सम्बन्ध सदैव मधुर रहे। संभवतः इसी कारण वे अनेक विषम एवं जटिल परिस्थितियों में भी सदियों से इन्हें सुरक्षित बनाये हुये हैं। वास्तव में जैनों ने सदैव ही न केवल हिन्दुओं से अपि तु अन्य अल्पसंख्यकों से भी सदैव अच्छे संबंध बनाये रखने के संकल्पबद्ध प्रयत्न किये। यही कारण है कि जब जैन शासक के रूप में रहे, उन्होंने कभी भी जैनेतर समुदायों को त्रास नहीं दिया। इसके विपरीत, जैनेतर शासकों द्वारा जैनों के सताये जाने के अनेक उदाहरण मिलते हैं।

शोध के प्रमुख क्षेत्र

प्राचीन काल से लेकर अब तक जैनों का अविरत सातत्य भारत में उनके सामाजिक इतिहास का एक महत्वपूर्ण पहलू है। इसलिये हमारे लिये न केवल यह आवश्यक है कि हम उनकी अतिजीविता के प्रमुख कारकों की छान बीन करें, अपि तु हमें उन कारकों पर भी ध्यान, अध्ययन और शोध करनी होगी जिनसे जैन भविष्य में भी अतिजीवित रह सकें। इस दृष्टि से हमें भारत के विभिन्न क्षेत्रों के जैन और बहुसंख्यक समुदाय के बीच वर्तमान संबंधों की प्रकृति और आयामों पर शोध तो करनी ही होगी। यही नहीं, इसी आधार पर भविष्य के संबंधों से संबंधित नीति भी हमें निर्धारित करनी होगी। इसके अतिरिक्त, दक्षिण राजस्थान, पश्चिमी मध्य प्रदेश, उत्तरी गुजरात, दक्षिणी महाराष्ट्र उत्तरी कर्नाटक के समान जैन-बहुल क्षेत्रों में जैनों के सामाजिक जीवन के विविध आयामों का अध्ययन करना होगा जिससे जैन जीवन पद्धति एवं उनकी समाजिक संस्थाओं का एकीकृत स्वरूप हमें ज्ञात हो सके। यही नहीं, बम्बई, कलकत्ता, अहमदाबाद, दिल्ली, इन्दौर, जयपुर, बंगलोर आदि बड़े-बड़े नगरों के जैनों का भी, उपर्युक्त आधारों पर वैज्ञानिक रीति से अध्ययन करना होगा। इसके साथ ही, उन कुटुंबों के विशेष योगदानों का विश्लेषणात्मक अध्ययन भी करना होगा जिन्होंने जैन जीवन पद्धति को प्रभावित और समृद्ध किया है। इसी प्रकार हमें उन परिवारों एवं व्यक्तियों के योगदान का विश्लेषणात्मक अध्ययन करना होगा जिन्होंने भारत के विभिन्न क्षेत्रों में आर्थिक, राजनीतिक, एवं सांस्कृतिक जीवन को नया विस्तार दिया है। जैनों के द्वारा स्थापित और संचालित शिक्षा, स्वास्थ्य एवं समाज कल्याण की संस्थाओं के भारतीय समाज के लिये योगदान की दृष्टि से भी यह अध्ययन करना सामान्य जन के हित में होगा।

●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org